International Journal of Applied Research 2020; 6(11): 286-287

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2020; 6(11): 286-287
www.allresearchjournal.com
Received: 19-09-2020
Accepted: 23-10-2020

अर्चना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अर्चना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

प्रसाद के नाटकों में स्त्री–विमर्श का उभरता स्वरूप

अर्चना कुमारी

सारांश
ध्रुवस्वामिनी' नाटक में स्त्री–अस्मिता का उभरता हुआ स्वरूप बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। ध्रुवस्वामिनी एक ऐसी स्त्री है जो तथाकथित स्त्री–सुलभ आवरण को उठा फेंकती है और संभाषण के आरम्भ से ही उसके भीतर ओज और आधुनिक स्त्रियोचित वेग दिखाई देता है। चाहे पति रामगुप्त हो, चाहे शिखर स्वामी हो या राजदरबार का अन्य कोई सदस्य। सभी के साथ वह तर्कपूर्ण ढंग से निर्भीकतापूर्वक संवाद कर सबको निरूत्तर करती है। रामगुप्त से प्रथम बार मिलते समय ही वह कहती है– 'इस प्रथम संभाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किन्तु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री सम्प्रदान से ही बढ़ा है?' इसके बाद शिखर स्वामी से वह कहती है– 'यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मंत्री महोदय क्या कहते हैं।" इतना ही नहीं पुरुषसत्ताशील समाज को चुनौती देते हुए और उभरते हुए स्त्री अस्मिता का एहसास करते हुए वह कहती है– 'कुछ नहीं, मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–सम्पत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। हाँ, तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं से चली जाऊँगी।'

मुख्य शब्द : ध्रुवस्वामिनी', स्त्री–अस्मिता, स्त्री–सुलभ आवरण

प्रस्तावना:
ध्रुवस्वामिनी को मानव नहीं समझ कर एक वस्तु के रूप में उसके साथ पिता और पति द्वारा खिलवाड़ किया गया। पिता ने उपहार में दिया और पति ने शकराज के पास भेजा। वह तमाम झंझाबातों को सहते हुए अनुकूल परिस्थिति आने पर स्वयं को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करती है। स्त्री अस्मिता के उभरते हुए स्वरूप के रूप में और आधुनिक नारीवादी स्त्रियों की पंक्ति में खड़ी होकर वह कहती है– 'मेरी इच्छा इस विवाद को खत्म करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि मैं कौन हूँ।"[1] यही शब्द कि 'मैं कौन हूँ? स्त्री अस्मिता की तलाश है। अब उसे अपनी गुमनामी बर्दाश्त नहीं। तभी तो वह आज ही निर्णय हो जाने की बात कहती है।
'ध्रुवस्वामिनी का साक्ष्य' नामक लेख में राजकिशोर कहते हैं– 'ध्रूवस्वामिनी प्रेम के अन्तर्संघर्ष और विवाह की मर्यादा इन दो पाटों के बीच पिसती रहती है। उसकी वेदना ही उसे महान बनाती है।..... इस तरह ध्रुवस्वामिनी प्रेम और विवाह, दोनों को उसकी मर्यादा बख्शती है।'[2] इस तरह वह एक उच्छृंखल स्त्री–अस्मिता की बात न करने संतुलित विचारों का निर्वहन करती है। जिससे स्त्री और पुरुष का सामंजस्य बना रहे और समाज विकास के पथ पर अग्रसर रहे। आगे राजकिशोर जी लिखते हैं– 'किन्तु ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति कैसे हो? ध्रुवस्वामिनी की केन्द्रीय समस्या यही है। प्रसाद इस आधुनिक अवधारणा में यकीन नहीं रखते कि स्त्री–पुरुष के बीच कोई टिकाऊ सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। प्रेमचंद के 'गोदान' में प्रोफेसर मेहता ने कुछ ऐसा ही दर्शन पेश किया है। बाद में यशपाल ने 'क्यों फँसें' में मुक्त प्रेम या निर्बन्ध सेक्स का समाजशास्त्र तैयार करने की कोशिश की। लेकिन प्रसाद के यहाँ यह अराजकता नहीं है। वे प्रेम को मान्यता देते हैं, उसके आनन्द और उसकी वेदना का गहरा आख्यान करते हैं, लेकिन सह–जीवन की परंपरागत व्यवस्था को भंग नहीं करना चाहते। एक संस्था के रूप में विवाह में उनकी अटूट आस्था है। लेकिन यदि विवाह यंत्रणापूर्ण हो जाये, तो उससे मुक्ति का कुछ उपाय होना चाहिए। प्रसाद ने स्त्री–पुरुष सम्बन्ध के इस पहलू के बारे में तब सोचा, जब तलाक को हिन्दू समाज में मान्यता नहीं मिली थी। हिन्दू स्त्री को कानूनी रूप में यह सुविधा मिली 1956 में, जब हिन्दू कोड बिल स्वीकार किया गया। उसक वक्त इसका प्रचंड विरोध हुआ था, किन्तु प्रतिक्रियावादी शक्तियों को अंततः झुकना पड़ा। लेकिन प्रसाद बहुत पहले ही स्त्री मुक्ति का सामाजिक संघर्ष छेड़ चुके थे।'[3] इस प्रकार स्त्री अस्मिता का उभरता हुआ एक संतुलित दृष्टिकोण प्रसाद ने पेश किया है।

ध्रुवस्वामिनी के हृदय में धैर्य की कमी नहीं है। वह गंभीर रहस्य को इस तरह छिपाकर रखती है और इसलिए छिपाकर रखती है कि विवाह सम्बन्ध टूटने न पाये। प्रायः आधुनिक स्त्रियों में देखा जाता है कि स्वायत्तत्ता के उन्माद में उन जरूरी चीजों को उपेक्षित कर देती हैं जो जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक होती है। प्रसाद ने नाटक में शकराज की मृत्यु और चन्द्रगुप्त को समस्त अधिकारों का स्वामी बनाकर यह सिद्ध करना चाहा है कि स्त्री की मुक्ति तभी संभव है जब सड़ी–गली व्यवस्था में बदलाव आये। यह बदलाव सिर्फ राजा के बदल जाने भर से वे सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि इसके लिए एक जनान्दोलन की आवश्यकता महसूस करते हुए जनता से विद्रोह भी करवाते हैं। पुरानी व्यवस्था यानी रामगुप्त की सामाजिक व्यवस्था के प्रति सामंत, पुरोहित और परिषद् सब के सब विद्रोह कर बैठते हैं। आज का स्त्री–आन्दोलन भी इस पुरानी परंपरा के विरोध में विद्रोह कर रहा है। इसी से स्त्री मुक्ति संभव है और जब स्त्री मुक्त होगी तो लोक–मुक्ति की कल्पना भी साकार होगी।

अनन्तदेवी का चरित्र भले ही षड्यंत्रकारी रहा हो, परन्तु उसकी महत्त्वाकांक्षा यही थी जिसके लिए वह अपने पुत्र का राज्याभिषेक कराने के लिए तरह–तरह की चाल चलती है किन्तु स्त्री–विमर्श की दृष्टि से उसका चरित्र आधुनिक है। पहले की स्त्रियाँ राजकाज में दिलचस्पी नहीं लेती थीं, उन्हें न अधिकार मिले थे और न उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान ही था। अनन्तदेवी अपने अधिकारों और सत्ता के प्रति शुरू से सचेत दिखाई देती है। उसके अन्दर साहस है और वह स्त्री–अस्मिता के उभरते हुए रूप को दर्शाती है। वह निर्भीकतापूर्वक कहती है– 'क्षुद्र हृदय जो चूहे के शब्द से भी शंकित होते हैं, जो अपनी साँस से भी चौंक उठते हैं, उनके लिए उन्नति का कण्टकित मार्ग नहीं है। महत्त्वाकांक्षा का दुर्गम स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है।'[4] वह स्पष्ट कर देती है कि यदि स्त्री समुदाय अपनी उन्नति चाहता है तो उसे पुरुषों द्वारा दिए गए विशेषण उतार फेंकना चाहिए। क्योंकि उन्नति का मार्ग काँटों से भरा है जो अबला कहलाने और चूड़ी पहनकर सिर्फ सौन्दर्य बिखेरने से नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं, एक आधुनिक और क्रांतिकारी स्त्री के समान वह कहती है– 'अपनी नियति का पथ मैं अपने पैरों चलूँगी।'[5] उसे अच्छी तरह मालूम हो गया है कि अधिकार माँगने से नहीं मिलते बल्कि छीनने से मिलते हैं। वह यह भी जान गई है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। इस प्रकार प्रसाद ने अनन्तदेवी के माध्यम से स्त्री–अस्मिता के उभरते हुए चरित्र को बखूबी उजागर किया है।

निष्कर्ष

ध्रुवस्वामिनी के अलावा यदि अन्य स्त्री–पात्रों को देखा जाय तो सभी स्त्री पात्र बेशक पुरूषसत्ता को चुनौती देती है, नियति के सामने उन्हें झुकना पड़ता है। यह प्रसाद की दृष्टि के कारण है क्योंकि वे उच्चतर मूल्यों के रचनाकार है। हमारी भारतीय संस्कृति समन्वयवादी है और यही कारण है कि मिश्र, असीरिया, बेबीलोनिया आदि देशों की संस्कृति और सभ्यता विलीन हो गई और भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। इसलिए प्रसाद ने स्त्री–पुरुष के बीच भी समन्वय को आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य माना। इनके स्त्री पात्र विविध क्षेत्रों जैसे– आध्यात्मिक, समन्वय, समरसता, राजनीति, कूटनीति, युद्ध आदि में महत्ता हासिल करते हुए स्त्री–अस्मिता की छाप छोड़ते हैं। इस प्रकार प्रसाद के नाटकों के स्त्री पात्रों में स्त्री–अस्मिता के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं।

संदर्भ–सूची –

1. 'ध्रुवस्वामिनी', जयशंकर प्रसाद, पृ॰–44
2. 'स्त्री–पुरुष कुछ पुनर्विचार', राजकिशोर, पृ॰–63
3. वही, राजकिशोर, पृ॰–65
4. 'स्कन्दगुप्त', जयशंकर प्रसाद', पृ॰–20–21
5. वही, पृ॰–21